ॐ दनुजवन कृसानाय नमः

नवमो अध्यायः

श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद

'राज विद्या, राज गुह्य योग'

अध्याय

दोहा- अनुसूया, अर्जुन समझ गोपनीय विज्ञान।
दु:ख रूप संसार से मुक्त होत जेहि जान॥

गोपनीय सुनि संभल कर बैठ गये विश्वेश।
धन्य, धन्य, ध्वनि से ध्वनित, गंगा, उमा, उमेश॥

अति सुगम, सर्वोत्तम, प्रत्यक्ष फल दे जीव को।
भूलकर हर सृष्टि दु:ख पाता सहज राजीव को।। 01

अन्यथा श्रद्धा रहित संसार में संलिप्त हो।
सृष्टि में हर दु:ख पा, संसार से ना मुक्त हो।। 02

भूतों में मैं, भूत मुझमें, जहां तक संसार है।
फिर भी मैं अव्यक्त हूँ, निर्लिप्त हूँ यह सार है।। 03

दृश्य है, सब भूत मुझमें, किन्तु मैं अदृश्य हूँ।
नीलिमा मे मेघ सम मैं देखा जाना शक्य हूँ।। 04

भूत सब स्थित हैं मुझमें, किन्तु मैं स्थित नहीं।
रत हैं सारे भूत मुझमें, मैं हूँ उनमें रत नहीं।। 05

वायु ज्यों आकाश में स्थित है और उत्पन्न है।
भूत भावन सृष्टि सारी, मुझमें यों सम्पन्न है।। 06

भूत यों ही लीन होते, मुझमें सब कल्पान्त में।
तब पुनः रचता हूँ उनको आदि में, एकान्त में।। 07

निज प्रकृति निज कार्यवश सब पाते अपना भोग हैं।
इस तरह हर युग में पाते, भूत अपना योग हैं।। 08

अब सुभद्राकान्त कह क्या कर्म कर मैं क्लान्त हूँ।
हो विरत हर योग रचकर भी मैं पावन शान्त हूँ।। 09

प्रकृति के कर्त्तव्य से पाते हैं सब परिपक्वता।
किन्तु हर कर्त्तव्य में रहती मेरी अध्यक्षता।। 10

लोक हित में यथा वांछित रूप हर अवधार्य है।
सृष्टि में हर योनि में, होना प्रकट स्वीकार है।। 11

मैं प्रकृति जन्मित नहीं, मैं प्रकृति अवधारण नहीं।
जान ले कौन्तेय मैं कोई मनुज साधारण नहीं।। 12

मोघ आसा, मोघ कर्मा, मोघ ज्ञाना जी रहे।
लोग सम्मोहित प्रकृति वश, मोह मदिरा पी रहे।। 13

किन्तु ज्ञानी, तापसी, नियमित विलक्षण भाव से।
मुझमें रत होकर सदा, भजते हैं मुझको चाव से।। 14

निर्गुणाकर, निर्विकारी, मुझको ज्ञानी जानते।
भक्त गण साकार अनुपम रूप से पहचानते।। 15

यज्ञ हूँ मैं स्वधा, स्वाहा, उच्चरित हर मंत्र हूँ।
अग्नि, घृत, हवि औषधि और हर हवन संयंत्र हूँ।। 16

परम पावन वेद चारों और स्वयं ओंकार हूँ।
पिता, माता, पितामह, हर व्यक्ति का परिवार हूँ।। 17

कर्ता, भर्ता, स्वामी सेवक, सबका वास स्थान हूँ।
लय, प्रलय, उत्पत्ति कारण, हर शरण संस्थान हूँ।। 18

सूर्य सा तपता हूँ अर्जुन, और बरसता मेघ सा।
सत् असत् हूँ, मृत्यु हूँ मैं और मैं ही अमरता।। 19

स्वर्ग पाते हैं सकामी, करके वैदिक कर्म को।
पाते हैं सुख भोग सारे, मानते जो धर्म को।। 20

पा के अनुपम रूप होते, स्वर्ग में सब देवता।
पुण्य फल सब भोग देते, फिर जनम को नेवता।। 21

अनन्याश्रित भक्त को, कैवल्य देता मैं स्वयं।
और हर स्थिति में करता, योग क्षेम वहाम्यहम।। 22

अन्य को भी पूजकर अर्जुन, मुझी को पूजते।
किन्तु ऐसे भक्त सब, अज्ञान से ही जूझते।। 23

पूजकर मुझको ही फल पाते हैं अपने कर्म का।
अस्तु फिर आते हैं भू पर पा के फल सद्धर्म का।। 24

दोहा- जो भी जैसे रूप से, करता सच्चा स्नेह।
मैं मिलता उस रूप से, उसको निस्सन्देह।।

देव मानों देव हूँ, यदि पितृ मानों पितृ हूँ।
भूत मानों भूत होकर, मैं ही तो सर्वत्र हूँ।। 25

पत्रं, पुष्पं, फलं, तोयं, देता जो सद्भाव से।
मैं प्रकट हो ग्रहण करता, अर्जुन उसको चाव से।। 26

भाव अर्पित करके मुझको जीव पाता त्राण है।
काल मुख से खींच लाता भक्त अपने प्राण है।। 27

अस्तु अर्जुन जो भी कुछ है, सब मुझी को दान कर।
यज्ञ, हवि सब कर्म फल दे, मुझको मेरा मानकर।। 28

तब शुभाशुभ कर्म फल से मुक्त तू हो जायेगा।
कर्म बन्धन मुक्त होकर, मेरे पद को पायेगा।। 29

भूतों में सम भाव व्यापक, कोई प्रिय अप्रिय नहीं।
पर न कोई भक्त ऐसा, जो मुझे अति प्रिय नहीं।। 30

मेरी भक्ति से न होता मोह बंधन फिर कभी।
साधुवत् हो जाते हैं अतिशय दुराचारी सभी।। 31

फिर न होता नष्ट, मेरा भक्त पाता शांति को।
धर्म दीक्षित आत्मा हो, फिर न पाता भ्रान्ति को।। 32

कर्म फल वश जन्म पाये, शुद्ध या चंडाल को।
शरण आते मुक्त करता, उसके भव जंजाल को।। 33

ब्राह्मण, राजर्षि तो होते ही हैं पुण्यात्मा।
मम शरण हो फिर न लेती जन्म उनकी आत्मा।। 34

अस्तु सब कुछ त्याग कर मेरी शरण यदि आयेगा।
भोग कर सारे सुखों को, मेरी ही गति पायेगा।। 35

दोहा- अर्जुन को समझा रहे, योग शास्त्र भगवान।
प्रभु को अर्पण कर रहे, तन मन, धन, हनुमान॥

राज विद्या योग का, जो पाठ करें लयलीन।
तिनके मन से रहत हैं, कृष्ण सदा आसीन॥

इति श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद
'राज विद्या, राज गुह्य योग नवम् अध्याय' समाप्त।